The Infinite
An International Peer Reviewed / Refereed Journal of Multidisciplinary Research

An Online Peer Reviewed / Refereed Journal
Volume 2 | Issue 5 | May 2025
ISSN: 3048-9539 (Online)
Website: www.theinfinite.in

वर्तमान परिवेश में भूमण्डलीकरण की चुनौतियाँ

अमित कुमार सिंह

छात्र

एम.एड., माँ खण्डवारी पी.जी. कॉलेज, चहनिया, चन्दौली, उ0प्र0।

ARTICLE DETAILS

Research Paper

कुंजी शब्दः

भूमण्डलीकरण, औद्योगीकरण, पर्यावरण संतुलन।

सारांश

भूमण्डलीकरण एक उत्तर राष्ट्रीय अवधारणा है। भूमण्डलीकरण निजीकरण तथा उदारीकरण की स्वाभाविक परिणति है, जिसने राष्ट्र राज्य व्यवस्था को चुनौती देने का प्रयास किया है। यह एक ऐसी सामाजिक प्रक्रिया है जिसमें भौगोलिक दबाव कमजोर हो जाते हैं तथा सांस्कृतिक व आर्थिक सम्बन्धों के आधार पर विश्व व्यवस्था का नियमन प्रारम्भ हो जाता है।

वस्तुतः भूमण्डलीकरण एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा विश्व को केवल राजनैतिक दृष्टि से ही नहीं अपितु आर्थिक व सांस्कृतिक दृष्टियों से भी, एक ही 'स्थान' बनाया जा रहा है। संचार का बढ़ता हुआ महत्व और भावी सम्भावना, व्यापार के क्षेत्र में अनेक नये विकास तथा समस्याओं और मुद्दों का विश्वव्यापी स्वरूप इसकी मुख्य विशेषताएँ हैं।

परिचय :

भूमण्डलीकरण के उपरान्त विश्व के सब हिस्सों में परस्पर सम्पर्क इतना बढ़ गया है कि जनसंचार के माध्यम अत्यन्त विस्तृत हो गये हैं जिससे सम्पूर्ण विश्व भूमण्डलीय ग्राम के रूप में परिवर्तित हो गया है। विश्व के एक कोने में जो घटना घटती है उसका प्रभाव विश्व के अन्य भागों पर भी पड़ता है। परिणाम स्वरूप विश्व के किसी भाग में पर्यावरण को जो क्षति पहुँचायी जाती है, उसका प्रभाव विश्व के बहुत बड़े हिस्से में हो गया है।[1]

भूमण्डलीकरण पूँजीवाद आर्थिक व राजनीतिक प्रणाली की तार्किक परिणति है जिसे 1980 के दशक के बाद विशेष लोकप्रियता मिली। पूँजीवाद वह आर्थिक और राजनीतिक प्रणाली होती है जो मुख्यतः औद्योगिक क्रान्ति के बाद विकसित हुई है। इसमें उत्पादन के विशाल धनराशि या पूँजी की जरूरत होती है। पूँजीवाद के अन्तर्गत उत्पादन के प्रमुख साधन मुख्यतः निजी स्वामित्व में रहते हैं। इनका प्रयोग भी निजी लाभ के लिए किया जाता है। वस्तुतः

भूमण्डलीकरण का आविष्कार पूँजीवादी शक्तियों के स्वार्थ साधना के लिए किया जाता है। यह तीसरी दुनियाँ के लिए नव उपनिवेशवाद की अभिव्यक्ति है।

भूमण्डलीकरण एवं पर्यावरण सन्तुलन

पूँजीवादी शक्तियों के विकास ने विश्व बाजार के उपभोक्ताओं की जरूरतों को तय करने, रोकने और संचालन करने में एकाधिकार पूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। वैश्विक विकास के नाम पर इनके पक्षकार अर्थशास्त्री दलील देते हैं कि मुक्त व्यापार हो तथा व्यापार से सार्वजनिक नियंत्रण हटे। किन्तु उत्पादनों पर नियंत्रण, मूल्यों का निर्धारण व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उपभोक्ता बाजारों का निर्माण कर पूँजीवाद ने एक नये तरह के पर्यावरणीय संकट को जन्म दिया है।

पूँजीवाद की प्रक्रिया से पोषित विकसित राष्ट्रों ने पर्यावरणीय संकट को विकासशील देशों की ओर निर्यातित करने की नीति अपनायी है। वे अब उत्पादन के ऐसे प्रदूषणकारी रूपों को जो उनके देशों में मुख्य पर्यावरणीय दबाव उत्पन्न करते हैं, अब विकासशील देशों में स्थापित करने लगे हैं। यह कार्य अक्सर इसे भ्रामित कर रहे हैं। वास्तव में इन उपायों का मुख्य उद्देश्य इन देशों की प्राकृतिक सम्पदा का दोहन करना है और साथ ही उत्पादन क्रियाओं के ऐसे रूपों का उन देशों में स्थापना करना है, जो कि पर्यावरण की दृष्टि से विशेष हानिकारक हों।[2]

भूमण्डलीकरण की पूँजीवादी प्रक्रिया एवं औद्योगीकृत व्यवस्था के उपभोक्तावादी समाज ने भारत सहित तीसरी दुनिया के अनेक देशों में प्राकृतिक प्रदूषण यथा जलवायु परिवर्तन, ओजोन रिक्तीकरण, वैश्विक तापमान में वृद्धि, ध्वनि, जल, वायु प्रदूषण इत्यादि के साथ–साथ सामाजिक दुष्परिणाम जिसमें तेजी से बढ़ती गरीबी, भूखमरी, बेरोजगारी, शहरों का नारकीय जीवन, नशीली दवाएँ, हिंसा और आतंक इत्यादि को उत्पन्न कर दिया है। इस प्रकार सामान्य जीवन में भूमण्डलीकरण का प्रभाव इतना विकसित हो गया है कि इसने समस्त भौतिक एवं सामाजिक पर्यावरण को प्रदूषित कर दिया है।

पर्यावरण संरक्षण की विशेष आवश्यकता जनसंख्या विस्फोट, औद्योगीकरण, भूमण्डलीकरण, नगरीकरण के परिप्रेक्ष्य में महसूस की गयी है। कारण यह है कि प्रकृति मानव की प्रत्येक आवश्यकता को तो पूरा कर सकती है परन्तु वह मानव की प्रत्येक लोलुपता को पूरा नहीं कर सकती। प्राकृतिक संसाधनों के बेतहाशा दोहन से पारिस्थितिकीय संकट व अतिशयवादी औद्योगीकरण से वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, मृदाप्रदूषण, इत्यादि की समस्याएँ बढ़ती गयीं।

समाज में आधुनिक प्रौद्योगिकी पर आधारित विकास ने स्वस्थ पर्यावरणीय संतुलन को सुरक्षित रखने की समस्या को उत्पन्न किया है। आधुनिक प्रौद्योगिकी की सहायता से बड़े पैमाने पर औद्योगिक उत्पादन के लिए प्रकृति के शोषण ने सम्पूर्ण विश्व में पर्यावरणीय संकट पैदा किया है।

भूमण्डलीकरण के प्रारम्भ में विकसित राष्ट्रों द्वारा इसका खूब गुणगान किया गया। ऐसा लगा कि सभी को बेहतर स्वास्थ्य, शिक्षा, आवास व संतोषप्रद रोजगार मिल सकेगा। किन्तु जल्द ही इसकी कमजोरियाँ स्पष्ट होने लगीं।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार अफ्रीका, लैटिन अमेरिका व एशिया के 80 प्रतिशत बच्चे कुपोषण के शिकार हैं। जिसका कारण यह है कि विकसित देशों में दुनिया के एक चौथाई लोग हर वर्ष मानव जाति द्वारा उपभोग किए जाने वाले संसाधनों में से 80 प्रतिशत का उपभोग करते हैं। बाकी तीन चौथाई लोग केवल 20 प्रतिशत संसाधनों से अपना काम चलाते हैं। यह भूमण्डलीकरण का दुष्परिणाम है कि इसने गरीब व अमीर देशों के मध्य अन्तर को लगातार बढ़ाया है। गरीब देश अपने प्राकृतिक संसाधनों के निर्यात से होने वाली आय पर निर्भर हैं। ऐसी आय पर व्यापारिक स्थितियों में परिवर्तन का काफी असर होता है। जब तक व्यापारिक संबंध ज्यादा समतापूर्ण नहीं होंगे, इन देशों के संसाधनों के निरंतर कम होने की आशंका बनी रहेगी और निर्यात के लिए संसाधनों के अंधाधुंध दोहन से इन देशों के पर्यावरण को अपूर्णीय क्षति पहुँचेगी।

पूँजीवादी दुनिया के अन्तर्गत विकसित पर्यावरण का यह संकट अनिवार्य रूप से अब विकासशील देशों में भी फैल गया है। विशेषकर उन देशों में जो कि विकसित देशों पर प्रत्यक्षतः आश्रित है। इन देशों में पर्यावरणीय समस्याओं के विशिष्ट लक्षण हैं। इनमें अनेक देशों में औपनिवेशिक शासन और साम्राज्यवादी ताकतों द्वारा उनकी प्राकृतिक सम्पत्ति की लूट ने उनके पर्यावरणीय संतुलन को बिगाड़ कर रख दिया है।

पारिस्थितिकीय भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया में उत्पादन तथा उपभोग का स्तर उस सोपान तक पहुँच जाता है जहाँ एक राष्ट्र के द्वारा किए गए कार्य का प्रभाव न सिर्फ पड़ोसी राष्ट्रों पर पड़ता है अपितु सम्पूर्ण विश्व इसके प्रभाव में आ जाता है। साधारण शब्दों में किसी भी व्यक्ति द्वारा प्रयोग किए गए रेफ्रिजरेटर या एयर कंडीशन से निकलने वाले क्लोरो–फलोरो कार्बन गैस का दुष्प्रभाव सम्पूर्ण ओजन मण्डल के परत को नुकसान पहुँचाता है। परिवहन के अंधाधुंध प्रयोग, पेड़ों की कटाई, कीटनाशकों के प्रयोगों ने सम्पूर्ण विश्व की जलवायु व्यवस्था को प्रभावित किया है। परिणाम स्वरूप पूरी दुनिया वैश्विक तापमान में हुयी वृद्धि से भयभीत है।

प्रगति पथ पर अग्रसर भारतीय समाज आज पाश्चात्य सभ्यता द्वारा प्रेरित भौतिकवाद के दौर से गुजर रहा है। समकालीन शिक्षा की अभिधारणा भी समाज की इस मनोभावना से अछूती नहीं रह सकती है। परिणामस्वरूप आज भारतीय शिक्षा ने भी पारम्परिक निर्माणात्मक भूमिका को त्यागकर समय के मांग के अनुकूल उपयोगितावादी भूमिका को आत्मसात करने की चेष्टा की है।

औद्योगिकीकरण से प्रभावित शिक्षा पद्धति ने सम्पूर्ण विश्व के पर्यावरण को असन्तुलित कर दिया है। वर्तमान शिक्षा पद्धति अपने मूल उद्देश्यों से भटक गयी है। ऐसे समय में एक ऐसी शिक्षा पद्धति की आवश्यकता है जो पर्यावरण संरक्षण को प्रोत्साहित करने के साथ–साथ सामाजिक प्रदूषण को नियंत्रित कर सके। इसी परिप्रेक्ष्य में पर्यावरणीय शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया गया है। इसका उद्देश्य आम जनता तक ऐसी शिक्षा को प्रसारित करना है जो आर्थिक एवं औद्योगिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए पारिस्थितिकीय तंत्र में हो रहे आवांक्षित परिवर्तन को रोक सके।

पर्यावरण संरक्षण हेतु वैश्विक प्रयास :

वर्तमान संदर्भ में पर्यावरण अवनयन द्वारा उत्पन्न संकटों से निपटने के लिए सन् 1972 ई. में स्टॉक होम में आयोजित मानव पर्यावरण शिखर सम्मेलन में पर्यावरणीय शिक्षा पर जोर दिया था। बाद में अक्टूबर सन् 1977 ई. में यूनेस्को की सहायता से रूस के बिल्सी नामक स्थान पर पर्यावरणीय शिक्षा पर सम्मेलन आयोजित किया गया था। अब प्रायः यह माना जाता है कि प्रभावी अधिगम के लिए बालक को अच्छे पर्यावरण की आवश्यकता होती है। इसीलिए प्रायः सभी देशों में पर्यावरणीय शिक्षा को तीन स्तरों पर लागू करने का प्रयास किया गया है। ये हैं– व्यक्तिगत स्तर, समूह स्तर एवं सामान्यजन स्तर। व्यक्तिगत स्तर पर प्रत्येक व्यक्ति को अपने पर्यावरण को जानने और समझने का मौका दिया जाता है तथा उसमें प्रदूषण के प्रभावों का विश्लेषण कर सकने की अपेक्षित संवेदनशीलता विकसित की जाती है। समूह स्तर पर पर्यावरण सुरक्षा के सामूहिक कार्यक्रमों को चलाया जाता है। जिससे अधिकाधिक लोगों में अपने समूह के प्रति जागरूकता और संवेदनशीलता आये। सामान्यजन स्तर पर पर्यावरण की समस्याओं को प्रकाश में लाने के लिए समाचार–पत्रों, दूरदर्शन, एडूसेट एवं आकाशवाणी का सहारा लिया जाता है तथा इस संदर्भ में इसे एक व्यापक अभियान का रूप दिया जाता है।

पर्यावरण एवं शिक्षा

पर्यावरण शिक्षा का लक्ष्य आधुनिक संसार में आर्थिक, राजनैतिक व पारिस्थितिकीय अन्योन्याश्रितता को सन्दर्भित करना है। इस प्रकार पर्यावरणीय शिक्षा का उद्देश्य एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की स्थापना करना है जिससे विभिन्न देशों एवं क्षेत्रों के मध्य पर्यावरण संरक्षण एवं विकास हेतु एक सेतु का निर्माण किया जा सके।

पर्यावरण तथा शिक्षा दोनों में विकास को महत्व दिया जाता है। पर्यावरण में वातावरण की गुणवत्ता तथा शिक्षा में व्यक्ति की गुणवत्ता को प्राथमिकता दी जाती है। शिक्षा को विकास की प्रक्रिया कहते हैं तथा पर्यावरण में आन्तरिक तथा बाह्य सम्पूर्ण परिस्थितियों को सम्मिलित किया जाता है जो मनुष्य तथा अन्य जीवों की अभिवृद्धि तथा विकास को प्रभावित करती है। प्रत्येक जीव तथा प्राणी का अपना पर्यावरण होता है। मनुष्य का वातावरण भौतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा राजनीतिक होता है। शिक्षा द्वारा इसकी गुणवत्ता के लिए परिवर्तन तथा सुधार भी किया जाता है।

'पर्यावरण शिक्षा' एक सामान्य शिक्षा नहीं है। यह पर्यावरणीय समस्याओं के निदान व उसके सम्भावित बचाव सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करने की शिक्षा है। पर्यावरणीय शिक्षा दायित्वों को जानने तथा विचारों को स्पष्ट करने की वह प्रक्रिया है जिससे मनुष्य अपनी संस्कृति और जैव–भौतिक परिवेश के मध्य स्वयं की सम्बद्धता को पहचानने और समझने के लिए आवश्यक कौशल व अभिवृत्ति का विकास कर सके।

पर्यावरणीय शिक्षा की मूल प्रकृति अन्तर्विषयक है, जो पर्यावरणीय समस्याओं से सम्बन्धित सभी तत्वों को समाहित किए है। पर्यावरणीय शिक्षा मानव की सम्पूर्ण क्रियाशीलता व प्राकृतिक पर्यावरण का अध्ययन करती है। इस प्रकार पर्यावरणीय शिक्षा केवल वैज्ञानिक समस्याओं, जैसे जल संकट, वायु प्रदूषण, मृदा अपरदन, जलवायु परिवर्तन,

ओजन क्षरण इत्यादि का ही नहीं अपितु इस समस्या को नियंत्रित करने वाले सामाजिक, कानूनी, आर्थिक, राजनीतिक व मनोवैज्ञानिक पहलुओं का भी अध्ययन करती है।

सन् 1987 में पर्यावरण एवं विकास पर विश्व आयोग ने "हमारा सामान्य भविष्य" प्रतिवेदन में पर्यावरण सम्बन्धी वैश्विक समस्या के विश्वस्तरीय सर्वजन सहयोग से निवारण की बात की। उच्चतम न्यायालय ने एम.सी. मेहता बनाम भारत संघ, दिल्ली पर्यावरण प्रदूषण मामला में विभिन्न शिक्षण संस्थाओं में माध्यमिक स्तर पर अनिवार्य पर्यावरणीय शिक्षा का निर्देश जारी करते हुए, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से सिफारिश की कि वह पर्यावरण को कॉलेज तथा विश्वविद्यालय स्तर पर अनिवार्य अध्ययन का विषय घोषित करने की सम्भावना पर विचार करे।

न्यायालय ने समय–समय पर पर्यावरण सम्बन्धी विभिन्न मामलों की सुनवाई करते हुए पर्यावरणीय शिक्षा को लागू करने की आवश्यकता पर बल दिया है। परिणामतः संघ एवं राज्य सरकारों द्वारा अनिवार्य विषय के रूप में पर्यावरणीय शिक्षा के अध्ययन को लागू किया गया।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 में यह व्यवस्था है कि पर्यावरण संरक्षण के मूल्य को कुछ अन्य मूल्यों के साथ शिक्षा के हर स्तर पर पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग बनाया जाए। केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजना 'स्कूली शिक्षा का पर्यावरणोन्मुखीकरण' वर्ष 1988–89 में शुरू की गई थी। इस योजना में स्वैच्छिक एजेन्सियों को स्कूलों में स्थानीय पर्यावरण सम्बन्धी स्थितियों के अनुसार शैक्षणिक कार्यक्रमों के सामंजस्य को बढ़ावा देने के उद्देश्य से प्रयोगात्मक और रचनात्मक कार्यक्रम चलाने के लिए सहायता दी जाती है।

पर्यावरणीय शिक्षा का उद्देश्य समस्याओं के संभावित समाधान के प्रति जनजागरूकता का विकास करना है, जिससे ऐसी व्यवस्था स्थापित की जा सके जिसमें व्यक्तियों की सक्रिय भागीदारी एवं प्राकृतिक संसाधनों के तार्किक प्रयोग द्वारा पर्यावरण का संरक्षण किया जा सके।

पर्यावरणीय शिक्षा जीवन की गुणवत्ता को आर्थिक संवृद्धि से ऊँचा स्थान देता है और प्राकृतिक संसाधनों, प्राकृतिक सौन्दर्य, वातावरण की स्वच्छता को संरक्षित रखने का प्रयास करता है।

अतः भूमण्डलीकरण जिसने सम्पूर्ण शिक्षा पद्धति को बाजार आधारित व्यवस्था पर निर्भर कर दिया है। शिक्षा को पर्यावरणोन्मुखी बनाकर समानता व सामाजिक न्याय के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

इस प्रकार पर्यावरणीय शिक्षा पद्धति का उद्देश्य एक ऐसी शिक्षा पद्धति को विकसित करना है जिससे प्रत्येक व्यक्ति के जीवन शैली का विकास पारिस्थितिकीय समग्रता तथा राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक न्याय की दिशा में हो सके।

निष्कर्ष :

इस प्रकार भूमण्डलीकरण की पूँजीवादी प्रक्रिया तथा उपभोक्तावादी समाज का भौतिकतावादी दृष्टिकोण पर्यावरण अवनयन का प्रमुख कारण है जो समय–समय पर विकासात्मक परियोजनाओं के माध्यम से परिलक्षित होता

है। इन बहुउद्देशीय विकासात्मक परियोजनाओं ने भौतिक पर्यावरण के साथ–साथ तीसरी दुनिया के अनेक देशों में मानवीय प्रदूषण को पैदा किया है। भारत में विस्थापितों के पुनर्वास व पुनर्स्थापन की समस्या इसी से जुड़ी है। प्राकृतिक स्रोतों पर निर्भर लोगों से लगातार उनकी भूमि व आवास को छीना जा रहा है।

पर्यावरणीय शिक्षा वर्तमान समस्याओं के साथ–साथ भविष्यगत समस्याओं के प्रति भी गम्भीर है। इसका उद्देश्य स्थानीय जनता में इस प्रकार की जनजागरूकता पैदा करना है जिससे वे सतत् विकास के लक्ष्यों में प्राप्त करते हुए विकास के पूँजीवादी अवधारणाओं को नकार सके।

पर्यावरणीय शिक्षा मानवीय विकास पर केन्द्रीत है न कि वस्तुओं के। अतः पर्यावरण क्षति को रोकने तथा पर्यावरण के सतत् प्रयोग को प्रोत्साहित करने हेतु ग्रामीण व जनजाति जनता के केन्द्रीय भूमिका तथा पुनः प्राकृतिक संसाधनों पर उनके प्रबन्धन व नियंत्रण को सुनिश्चित करना होगा।

अन्ततः पर्यावरणीय शिक्षा लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण कृषिगत समाज, महिलायें, स्थानीय ग्रामीण जनता तथा विद्यार्थियों के माध्यम से स्वच्छ व स्वस्थ पर्यावरण की प्रतिबद्धता को स्वीकार करता है।

संदर्भ

1. यादव, हीरालाल 2005–2006 पर्यावरण अध्ययन, नीलकमल प्रकाशन, गोरखपुर।

2. गोयल, एम.के. 2003 संशोधित, पर्यावरण शिक्षा, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।

3. उपाध्याय, राधावल्लभ, नवीनतम संस्करण, पर्यावरण शिक्षा, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

4. क्रिस पैटन व्हाट नेक्सट : सर्वाइविंग द ट्वेटीएथ सेंचुरी, पेंग्विन इंडिया